क्यों हो अधीर माता, गुरुकुल में मैं आ बसा हूँ

दादी आलराउण्डर जी अपने अनुभव की दास्तान इस प्रकार सुनाती हैं कि मेरी एक मामी थीं जिनका नाम गंगा देवी था। उनकी भक्ति में अटूट भावना थी। मेरे भी भक्ति-प्रधान संस्कार थे। लौकिक सम्बन्ध के कारण मैं उनके पास जाया करती थी। उनके पास काश्मीर से लाल अक्षरों में लिखा हुआ पत्र आया करता था जिसे वह मुझे भी सुनाती थीं। सुनते-सुनते अन्दर सन्नाटा-सा छा जाता था और एक लाइट-सी अन्दर घूमती थी। उस पत्र को बार-बार सुनने की इच्छा होती थी। पत्र सुनने की इच्छा से मैं जैसे-कैसे बार-बार उनके पास जाया करती थी।

बाबा की भृकुटि में सफ़ेद प्रकाश का गोला चमक रहा था

एक बार मेरी मामी ने बाबा को एक महान् पुरुष जानकर अपने घर में निमंत्रण दिया। बाबा, ओम् राधे, ध्यानी आदि 30 जनें बस भर कर उनके यहाँ पधारे। मैं भी वहाँ पहुँच गयी। पहले दिन जब सत्संग शुरू हुआ और सामने सन्दली पर बाबा को देखा तो ऐसे लगा जैसे बाबा की भृकुटि में सफ़ेद प्रकाश का गोला चमक रहा हो। उस प्रकाश के गोले में बड़ा आकर्षण था। मैं तो उसी की तरफ़ एकटक देखती रही। मन में विचार आया कि ऐसे महान् पुरुष को तो कभी नहीं देखा। जीवन में यह तो लक्ष्य था कि गुरु करना चाहिए क्योंकि सुन रखा था कि गुरु बिना गति नहीं। सोचा क्यों न ऐसे महान् पुरुष को ही गुरु कर लें। उसी क्षण उन्हें गुरु बनाने का दृढ़ संकल्प कर लिया। ऐसा सोचते-सोचते ही उस दिन की सभा समाप्त हो गयी। जितने दिन बाबा वहाँ रहे, मैं भी वहाँ ही रही।

दूसरे दिन अमृतवेले बाबा ने ध्यानी बहन को कहा कि बच्ची को नक्शा समझाओ। अमृतवेले सत्संग के बाद बाबा ने मुझे 'तीन लोक' का नक्शा समझाया।

बाबा सुबह-शाम सत्संग करते रहे। बस, मन में यही आता था कि भृकुटि में उस प्रकाश के गोले को ही देखती रहूँ, फिर तो ज्ञान भी बुद्धि में घूमने लगा, जिसे सुनने की बार-बार इच्छा उत्पन्न होती थी। इकट्ठे रहने के कारण उस दिन से बाबा व अन्य बहनों से भी स्नेह जुटता गया। बाबा ने समझाया कि देवलोक में वही जायेगा जो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करेगा। फिर मेरे लौकिक पति भी वहाँ आने लगे। उन्होंने जब बाबा से ज्ञान सुना तो उनका भी बाबा से रूहानी सम्बन्ध जुट गया और हम दोनों ने यह प्रतिज्ञा की कि विचारों में भी एक-दूसरे का साथ देंगे और जीवन को पवित्र बनायेंगे। उसी समय से बाबा द्वारा बतायी गयी धारणाओं का हम पालन करने लगे। फिर बाबा वापस चले गये लेकिन पत्राचार जारी रहा।

लौकिक बच्ची का बाल भवन में प्रवेश

जब हैदराबाद (सिन्ध) में बाल भवन बना तो हमें यह समाचार मिला कि जिन बच्चों के माँ-बाप ईश्वरीय ज्ञान की शिक्षा लेने ओम् मंडली में आते हैं, वे (बच्चे) चाहे तो बाल भवन में रह सकते हैं। मैंने अपनी एक लौकिक बच्ची शोभा (दादी गुल्जार), जो उस वक्त क़रीब 9 वर्ष की थी और एक स्कूल में पढ़ती थी, को स्कूल छुड़वा कर बाल भवन के छात्रालय में दाख़िला करवा दिया। इस ईश्वरीय छात्रालय की पढ़ाई देखकर हमारे अन्य सम्बन्धियों ने भी अपनी बच्चियों को वहाँ ही दाख़िला करा दिया और स्वयं भी यह शिक्षा लेने लगे। इस प्रकार, हम अपनी धारणाओं पर चलते रहे। इसी बीच हंगामे, पिकेटिंग आदि शुरू हो गये। उपद्रवियों ने ख़ूब ही हल्ला मचाया। हरेक बच्चे को उनके अपने-अपने घर में रवाना कर दिया। उसमें शोभा भी घर आ गयी। उनका आने से ऐसे लगता था जैसे एक अलौकिक दुनिया से लौकिक दुनिया में आ गये हैं। उनको जो शिक्षा मिली थी और जैसा वातावरण मिला था उसमें और अब घर के वातावरण में तथा रहन-सहन के तरीके में रात-दिन का फ़रक

था। यह देखकर मेरे मन में सदैव यह ख़याल आता था कि ईश्वरार्थ सेवा में दान दी हुई चीज़ (लौकिक बच्ची शोभा) को वापस नहीं लेना चाहिए। परन्तु बच्चे तो बच्चे ही होते हैं, उन्हें जैसे रखो, जिस ओर ढालो उसी तरफ़ ढल जाते हैं। हम दोनों (मैं और मेरे लौकिक पति), जो अब तक एकमत होकर चलते थे, के विचारों में भी अन्तर आ गया। एक तरफ़ सारा परिवार और दूसरी तरफ़ मैं अकेली। विचारों में अन्तर आ जाने के कारण मुझे संसार से वैराग्य आने लगा। मुझे यह संकल्प आता था कि मैं पूरी तरह से ईश्वरीय सेवा करूँ, उस प्रभु की ही बन जाऊँ और रात-दिन यही पुकार चलती रहती थी कि 'हे प्रभु, कब ये दोनों जीवन आपके हवाले होंगे?''

हंगामे के कारण हम पर बन्धन

इसी बीच हैदराबाद में बहुत हंगामे होने के कारण बाबा कराची में आ गये। जब-जब मुझे मौका मिलता घूमने-फिरने या लौकिक सम्बन्धियों से मिलने के निमित्त मैं सुबह चार बजे सत्संग में जाया करती थी। सत्संग भवन हमारे घर से लगभग 10 मील दूर था। सवेरे एक ट्राम या घोड़ा-गाड़ी मिलती थी। ट्राम सवेरे-सवेरे मज़दूरों को ले जाती थी, हम भी उसमें ही चढ़कर चले जाते थे। उन मज़दूरों की दृष्टि-वृत्ति तो ख़राब होती थी लेकिन हम इसी निश्चय के साथ कि ''जाको राखे साँइयाँ मार सके ना कोये, बाल न बाँका कर सके चाहे सब जग बैरी होय'', निर्भय होकर रोज़ सत्संग करके आठ बजे घर पहुँच जाती थीं। लौकिक पति कभी साथ देते थे और कभी नहीं देते थे। ऐसे चलते-चलते वैराग्य और भी बढ़ता गया। बच्ची शोभा को भी अन्य लौकिक सम्बन्धी इस मायावी दुनिया की ओर अधिक खींचने का यत्न करते थे। चलते-चलते कहीं उस संगत का, खान-पान का प्रभाव उस पर न पड़ जाये, यह सोचकर मन में ही कहती थी कि इसको इस मायावी दुनिया से बचाना चाहिए। यह देखकर लौकिक सम्बन्धी मुझ पर और भी अधिक बन्धन डालने लगे क्योंकि उनके मन में यह आता था कि स्वयं के साथ बच्ची को भी ''बिगाड़ती है'' (वे तब ईश्वरीय मार्ग पर ले जाने को बिगाड़ना मानते थे)। उन्होंने मेरा सत्संग में आना-जाना बन्द कर दिया। अब जब मुझ पर पूरी निगरानी रहने लगी तो ईश्वरीय प्यास को बुझाने के लिए मैं दिन के वक्त किसी-न-किसी कारणवश घर से बाहर निकल जाती थी और दूसरे-तीसरे दिन अपने सत्संग के स्थान पर पहुँच ही जाती थी। कभी-कभी अपने ड्राइवर को भी थोड़ा समझा-बुझाकर उससे मदद ले लेती थी तो वह कार में मुझे छोड़ आता था। इस प्रकार कुछ दिन यही चलता रहा। आख़िर यह बात कब तक छिपती। जब सबको पता चला तो सब बहुत डराने, धमकाने, लगे क्योंकि 50 सदस्यों के बड़े परिवार में मैं ही सबसे छोटी थी। उस समय मैं उन्हें तो कुछ नहीं कहती थी। बस, एक कोने में बैठकर भगवान (शिव बाबा) को याद करती थी। मेरे कानों में यह आवाज़ गूँजा करती थी:

''क्यों हो अधीर माता, गुरुकुल में आ बसा हूँ
सन्ताप सख्त भारी अबला पर मैं देख रहा हूँ
क्यों हो अधीर माता...''

जिस समय यह गीत गाती थी उस समय ऐसा अनुभव होता था कि बाबा हम आत्माओं में शक्ति भर रहे हैं जिसके आधार से ही हम जी रहे हैं। आख़िर एक दिन यह संकल्प आया कि इस स्वार्थी एवं विकारी दुनिया को छोड़कर ईश्वरीय दुनिया में क्यों न चलें? यदि अत्याचार न होते तो यह विचार न आता। यह दृढ़ संकल्प करके अमृतवेले चार बजे शोभा को नींद से जगाकर, उसको साथ लेकर कराची सत्संग में पहुँच गयी। सत्संग चल रहा था। बाबा की नज़र जब मुझ पर पड़ी तो बाबा ने पूछा, ''बच्ची, कैसे आयी हो?'' बाद में और सबने भी पूछा। मैंने कहा, ''पुरानी दुनिया के धन्धों को त्याग कर आयी हूँ।'' बाबा ने कहा, ''बच्ची, ऐसे मौके पर, जबकि कराची में इतना हंगामा हो रहा है, तुम यहाँ कैसे रह सकती हो?'' मैंने कहा, ''नहीं बाबा, अब तो मेरा पाँव सद्गुरु के घर में है; अब यह पीछे कैसे हट सकता है।

सतगुरु मिलने जाइये, साथ न लीजे कोई,
आगे पाँव राखिये पीछे पाँव न होई।

फिर दयानिधि बाबा ने कहा, ''बच्ची पर सितम होता है, अच्छा जब बच्ची कहती है कि मैं सिलाई की क्लास में रहूँगी, तो फ़िलहाल इसे वहाँ रहने दो और अगर कोई पूछे तो कहना कि वह सिलाई की क्लास में है।

लोगों की अफवाहों के कारण हम पर अत्याचार

इस प्रकार सारा दिन बीत गया। मन में संकल्प आता था कि कहीं कोई खींचकर वापस न ले जावे। शाम के 6 बजे थे। एक टैक्सी लेकर मेरा पति और अन्य सम्बन्धी आ गये। दो व्यक्ति बाहर ही रहे और दो अन्दर भवन में आ गये। कहने लगे, ''हम रुक्मणी से मिलना चाहते हैं। बाबा की अनुमति से उन्हें अन्दर आकर मिलने की स्वीकृति दे दी गयी। उन्होंने पूछा, ''तुम यहाँ क्यों आयी हो?'' मैंने कहा कि मैं सत्संग के बिना नहीं रह सकती। अब हम दोनों (मैं और शोभा) यहाँ ही रहेंगे। अपने हाथ से मेहनत करके शरीर निर्वाह करूँगी। मैं सिलाई का काम करूँगी। यह सुनकर उनकी आँखें गुस्से से लाल हो गयीं और उसी कम्पाउण्ड में, जहाँ मैं उनसे मिल रही थी, उन्होंने मुझे हाथ-पाँव से पकड़कर खींचते हुए, उठाकर टैक्सी में डाल दिया। टैक्सी में उन चारों (लौकिक देवर, दो मामे और लौकिक पति) ने मुझे कस कर पकड़ रखा और टैक्सी चल दी। मैंने भी उस टैक्सी से निकलने की पूरी कोशिश की। मैंने कहा, ''आज मैं मर जाऊँगी लेकिन आपके साथ नहीं आऊँगी। आपघात कर लूँगी लेकिन इस रीति से घर नहीं जाऊँगी।''

यह बात सुनकर उन्हें, विशेषकर पति को, मुझ पर या तो रहम आने लगा या वे डर गये और पूछने लगे कि क्या तुम अलग रहना चाहती हो? वे मुझे पाँच मील दूर एक दोस्त के ख़ाली फ़्लैट में ले गये और कहने लगे, ''हम तुम्हें अलग रखते हैं, तुम आपघात न करो।'' मैंने कहा, ''मेरी चार बातें सुन लो। (1) मैं अलग रहूँगी अर्थात् जो जीवन को अशुद्ध बनाने लिए दबाव डालते हैं उनके साथ नहीं रहूँगी। (2) दिन में एक बार सत्संग में ज़रूर जाऊँगी। (3) शोभा को घर वापस नहीं लाऊँगी। (4) सभी नियमों (ब्रह्मचर्य, शुद्ध अन्न आदि के नियमों) पर चलूँगी। आप मुझे इन चारों बातों की स्वीकृति की चिट्ठी लिखकर दो वरना तो मैं आपघात कर लूँगी। सम्बन्धी सभी चले गये थे, सिर्फ लौकिक पति ही साथ थे और मैं चुन्नी लेकर गला घोटने लगी।

उन्होंने मुझसे पूछा, ''तुम घर से निकलना क्यों चाहती हो? आपघात क्यों करती हो?''

मैंने कहा, ''मैं सत्संग छोड़ नहीं सकती, नियमों को छोड़ नहीं सकती, बच्ची को ईश्वरीय पढ़ाई तथा सेवा में देकर वापस नहीं ले सकती। आप या तो मेरी बात मानो, नहीं तो मुझे आपघात करने दो। रात का समय था। उन्होंने सोचा कहीं कोई ऐसी घटना न घट जाये तो चारों ही बातों का स्वीकृति-पत्र लिख कर दे दिया। शायद यह प्रभाव उसी अविनाशी ज्ञान के बीज का था जो पति में भी पड़ा हुआ था। अमृतवेले चार बजे उसी अकेले मकान से मुझे वे सत्संग में ले गये।

जब मैं वहाँ पहुँची तो सभी आश्चर्यचकित रह गये। कल तो इसको हाथ-पाँव पकड़ उठाकर ले गये थे, आज सवेरे ही फिर यह कैसे पहुँचीह्न! फिर तो शोभा भी वहाँ ही रहने लगी। लगभग ढाई मास तो ये चारों बातें ठीक चलीं। धीरे-धीरे उस घर से फिर मुझे अपने बंगले में ले गये। वे कहते थे कि हम रोज़ तुझे सत्संग में ले आयेंगे परन्तु अपना मकान होते हुए 300 रुपये फ़ालतू इस बंगले के किराये पर क्यों ख़र्चे? वहाँ अपने मकान में भी कुछ समय तो ठीक चला परन्तु फिर वही सत्संग बन्द करने की सख्ती शुरू हो गयी।

फिर वही ढाक के तीन पात

अब फिर लौकिक सम्बन्धी लौकिक पति को उल्टा पाठ पढ़ाने लगे। व्यापार इकट्ठा होने के कारण बड़े भाइयों का छोटों पर बहुत प्रभाव था, अतः मेरा पति उनकी बात मानने पर मज़बूर हो जाता था। अब उन्होंने भी रोकना-टोकना शुरू कर दिया। स्वयं को बन्धन में देखकर एक दिन मैं किसी बहाने से फिर सत्संग में पहुँच गयी। उन्होंने जाँच की तो उन्हें मेरे वहाँ जाने की बात मालूम हो गयी। अब उन्होंने सारे घर में ताला लगा दिया। मैंने कहा अगर आप मुझे जेल में बन्द रखते हैं तो मैं भोजन नहीं करूँगी। आप आत्मा का भोजन बन्द करते हैं तो मैं शरीर का भोजन बन्द कर दूँगी। शरीर छूट जायेगा तो मैं प्रभु के पास चचले जाऊँगी। ताले लग गये, पहरेदार खड़े हो गये। छोटे-बड़े सभी को यह बता दिया गया कि इसकी पूरी निगरानी की जाये। दो-तीन दिन खाना न खाने के कारण मेरा शरीर कमज़ोर हो गया परन्तु आत्मा को सूक्ष्म शक्ति रूपी भोजन मिलता रहा। सबको डर लगने लगा कि कहीं इसका शरीर न छूट जाये। बहुत बार उन्होंने मायावी दुनिया की तरफ़ बहलाने की कोशिश की परन्तु जो मन एक बार प्रभु का हो चुका था, वह अब और किसी का कैसे हो सकता था?

मैंने रंगीन वस्त्र, ज़ेवर आदि उतार कर सफ़ेद कपड़े पहन लिये थे। घर वालों को यही विचार आता था कि अमीरी से ग़रीबी को कैसे देखेंगी? वे सोचते थे कि यह स्वयं ही ठीक हो जायेगी।

इधर सितम, उधर प्रभुकृपा

इधर रात-दिन ऐसे सितम सह रही थी, उधर प्रभुकृपा से साक्षात्कार होने लगे। विष्णु के रूप में बाबा आकर यही कहते थे कि "बच्ची, धैर्य धरोह्व! ये कष्टों की दुनिया, सितमों की दुनिया अब गयी कि गयी। इससे पार कराने के लिए मैं आ चुका हूँ।" जब यह आवाज़ सुनती थी तो मुझे तसल्ली होती थी कि इस जेलख़ाने में भी मेरा कोई रक्षक है। फिर मैं बाबा के साथ बात भी करती थी जो बाहर वाले भी सुनते थे जिससे उनको यह लगता था कि इसकी लगन पक्की होती जा रही। परन्तु वे सब तो इतने सहानुभूतिहीन थे कि उन्होंने बहुत ही निर्दयतापूर्वक व्यवहार किया, मेरी एक भी बात नहीं मानी। मन में यही आता था कि आख़िर इस जेलख़ाने में कब तक रहूँगी; अब इससे कैसे छूटूँह्व! कोशिश तो बहुत की कि चाबी मिल जाये परन्तु नहीं मिली। मैंने सोचा कि कहते हैं कि जब प्रह्लाद पहाड़ी से कूदा तो उसे भगवान ने बचाया। मैं भी तो उस प्रभु ही की हूँ तो मैं भी क्यों न इस गैलरी से छलांग लगा दूँ? भगवान मुझे भी अवश्य बचायेंगे। यह संकल्प दृढ़ होता गया। अन्दर ही अन्दर तैयारी चलती रही। जो भी सामान था (कपड़े, ज़ेवर आदि) उसकी लिस्ट बनाकर बाहर की अलमारी में रखी ताकि कहीं उनका ये संकल्प न चले कि सामान लेकर चली गयी। मैंने एक रज़ाई को दो-तीन लपेटे देकर नीचे डाल दी ताकि उस पर छलांग लगाने से आवाज़ नहीं आये।

प्रभु के आसरे पर विकारों की जेल से छूटने का यत्न

जब रात को 12 बजे सब सो गये, तो मैंने छलांग लगानी चाही। नीचे नज़र डाली तो चौकीदार घूम रहे थे। उस समय छलांग लगाना मैंने उचित नहीं समझा। यह सोचते-सोचते मेरी नज़र साथ वाले बंगले की ओर गयी जिसकी गैलरी हमारी गैलरी से 8-10 फुट दूरी पर थी। विचार चला कि वहाँ पहुँच कर उनकी सीढ़ियों से चली जाऊँगी। इसके सिवाय उस जेल से निकलने का और कोई उपाय नहीं दिखता था। इसमें बहुत ख़तरा भी था परन्तु क्या करती?

गर्मियों के दिन थे। उस परिवार वाले उसी गैलरी में सो रहे थे। रात को एक बजे मैंने चलकर अपनी गैलरी से उनकी गैलरी में छलांग लगा दी। जैसे ही मैं वहाँ पहुँची तो मेरा पाँव उनके बच्चे को लगा। वह बच्चा रोने लगा, उसकी माँ जाग गयी। मैं सोचने लगी कि अगर इन्होंने मुझे देख लिया तो पता नहीं क्या कहेंगी। परन्तु फिर सोचा कि शिव बाबा तो साथ है ही और मेरे मन में भी कोई ख़राबी तो है नहीं। ख़ैर उस माता ने मुझे नहीं देखा और मैं वह गैलरी पार करके आगे बढ़ने लगी और हाथ से टटोलने लगी कि बिजली का स्विच कहाँ है ताकि सीढ़ियों का पता चले। कमरे के बाहर आने पर एक स्विच पर हाथ पड़ा। मैंने जैसे ही बत्ती जलायी मकान मालिक जाग गया और इधर-उधर देखने लगा। मैंने फ़ौरन बिजली बन्द कर दी। मकान मालिक फिर सो गया। फिर मैं आगे बढ़ी तो एक दरवाज़े पर हाथ लगा। उसको खोला तो सीढ़ी नज़र आयी। सीढ़ी से नीचे उतरी तो वहाँ सामने एक होटल था। वहाँ से आवाज़ आ रही थी। उस वक्त मेरे मन में यही आया:

जिसके ऊपर तू मेरा रक्षक स्वामी, वह दुःख कैसे पायेह्व!

दरवाज़ा खोलने लगी पर वह नहीं खुला। शिव बाबा को मन ही मन बहुत याद किया और सोच लिया कि अब क़दम आगे बढ़ाया है तो पीछे नहीं हटाना है। रक्षक मेरी रक्षा करे। फिर मैंने दरवाज़ा खोलने की कोशिश की। हाथ लगते ही लोहे की पट्टी ऊपर उठी, दरवाज़ा खुल गया। जैसे ही दरवाज़ा खोला तो देखती हूँ कि उसी वक्त चौकीदार दरवाज़े के सामने से आगे चला जा रहा था। मैं बाहर निकली, दरवाज़ा बन्द किया। अब डेढ़ बज चुका था। दीवार से कूदने के कारण मैंने चप्पल भी नहीं पहनी थी ताकि कोई उस आवाज़ से उठ न जाये और कपड़े भी बाँध लिये थे ताकि छलांग लगाते समय कही अटक न जाये। "जिसके ऊपर तू मेरा रक्षक स्वामी, वह दुःख कैसे पाये", यह मन ही मन गुनगुनाते हुए नंगे पाँव रास्ता पार करने लगी।

परीक्षा के बाद परीक्षा

उसी समय बारिश ने भी स्वागत किया। रास्ते में एक सिपाही मिला। जब उसने देखो कि एक स्त्री रात के अन्धेरे में नंगे पाँव वर्षा में जा रही है तो उसने पीछा किया कि आख़िर जाती कहाँ है। रास्ते में और भी सिपाही मिले। वे भी उनके साथ हो मेरा पीछा करते गये। घर से तीन मील की दूरी पर बाज़ार था। वहाँ से गाड़ी मिलती थी। मैंने सोचा वहाँ से गाड़ी में बैठकर आश्रम में पहुँच जाऊँगी। इस प्रकार, सोचती हुई चली जा रही थी। पुलिस वाले मिलकर आठ हो गये। उन्होंने मुझ से पूछा, "कहाँ जा रही हो?" मैंने कहा, "सत्संग में जा रही हूँ।" लेकिन फिर भी उन्होंने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। वे कहने लगे, "इस समय कौन-से सत्संग में जाओगी?" रास्ते में एक गाड़ी मिली, मैंने गाड़ी वाले को कहा कि दस मील दूर सत्संग में ले चलो। पुलिस वालों ने

सोचा होगा कि कहीं और ही न ले जाये, उन्होंने कहा, ''अभी थाने में चलकर बैठो, सुबह होते ही चली जाना।'' नंगे पाँव और रात के कपड़े देखकर उन्होंने सोचा कि शायद यह अच्छी नारी भी है या नहीं। उन्होंने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। उस समय प्रभु को पुकारा, ''हे प्रभु, अब रक्षा करोह्न! भक्तों पर भीड़ पड़ी है, उसे आप ही तो सँवारेंगेह्न!''

पुलिस और भी इकट्ठी हो गयी। मैंने सोचा, अब कहाँ जाऊँ? आश्रम तो दस मील दूर था। दूसरे के घर से कूदी थी तो थोड़ी देर मन में हलचल भी मची। फिर मन से आवाज़ आयी,

जिसके ऊपर तू मेरा रक्षक स्वामी, सो दुःख कैसे पायेह्न!

मुसीबत अकेली नहीं आया करती

मैंने सोचा क्यों न लौकिक पीहर घर में अपनी लौकिक माँ के पास जाऊँ? मैंने पुलिस वालों को कहा कि मुझे सत्संग में चार बजे जाना था लेकिन अगर अभी दो बजे हैं तो मैं तब तक अपनी माँ के पास चली जाती हूँ। इलाके-इलाके के सिपाही इकट्ठे होते-होते अब तक 25 हो गये। रास्ता पार कर मैं 25 पुलिस वालों के साथ माता जी के दरवाज़े पर पहुँची। दरवाज़ा बन्द था। सब सो रहे थे। माता जी तीसरी मंज़िल पर थीं। मैंने दरवाज़ा खटखटाया परन्तु उन्हें नहीं सुना। माता जी के घर के नज़दीक ही गंगा देवी (मेरी लौकिक मामी जी) का घर था। वहाँ के चौकीदार ने जब देखा कि हमारे घर की लड़की नंगे पाँव आयी है और साथ में 25 पुलिस वालों को भी लायी है तो उन्होंने मुझसे बिना कुछ पूछे ही मामा जी को इतला दे दी। मेरे दोनों मामे आये, जो इस ईश्वरीय ज्ञान के बिल्कुल खिलाफ़ थे। उन्होंने पुलिस को कहा, ''आप जाइये, यह हमारी लड़की है।'' पुलिस तो चली गयी। मामा जी ने बहुत ही क्रूरता पूर्वक मुझ से व्यवहार किया। वे मेरे सम्मुख आये और पूछने लगे, ''क्या हुआ, इस समय कहाँ से आयी हो? तुमने हमारी इज़्ज़त ख़ाक में मिला दी है। क्या यह शोभा देता है कि इतनी रात हो गयी हो और इतने पुलिस वालों के साथ आयी हो? तुम तो हमारे घर की आबरू ख़त्म करने के लिए पैदा हुई हो।'' उन्हें मालूम था कि मैं तालों में बन्द थी। वे कहने लगे अब अपनी जिद्द छोड़ो और जैसे वे कहते हैं, वैसे करो।''

मैंने कहा, ''मामा जी, अब मुझे छुट्टी है, इसलिए आज सत्संग में जा रही हूँ। घड़ी रुक जाने के कारण मैंने समझा कि चार बज गये हैं लेकिन अभी दो बजे हैं। मैंने सोचा कि चलो अपनी बहन रुक्मणी के साथ ही सत्संग में चली जाऊँगी (रुक्मणी मेरी छोटी बहन है)। पुलिस वाले साथ हो लिये थे, बाक़ी ऐसी कोई बात नहीं है।'' फिर मैंने दरवाज़ा खटखटाया। माता जी ने सुना और वह नीचे आयीं। मैंने मामा जी से कहा, ''मामा जी, आप जाकर आराम कीजिये, मैं ऊपर चली जाऊँगी और सवेरे रुक्मणी के साथ ही सत्संग में चली जाऊँगी। मैं समझती हूँ कि यह भगवान (शिव बाबा) की ही कृपा थी कि मामा जी जाकर सो गये। फिर तो ऊपर आकर माता जी को सारी दुःखभरी दास्तान सुनायी कि कैसे मुझे इतने दिन उन्होंने तालों में बन्द रखा। मैंने खाना भी नहीं खाया। यह सुनकर उनमें भी वैराग्य उत्पन्न हुआ। मैंने कहा, ''इतने दिनों से सत्संग में नहीं गयी हूँ। आज रुक्मणी बहन के साथ साथ चलूँगी। हम ठीक चार बजे घोड़ा-गाड़ी लेकर कुँज भवन वाले मकान में पहुँच गये। कुँज भवन वहाँ से लगभग 14 मील दूर था। आख़िर हम सत्संग में पहुँचे।

नया जीवन

बाद में मातेश्वरी जी और पिताश्री जी से मिलना हुआ। मैंने उन्हें बताया कि आज मैंने आसुरी जीवन का त्याग कर ईश्वरीय जीवन बनाने का क़दम उठाया है। आज मैं बीते हुए जीवन को इस ड्रामा की रील में समाप्त कर देने की प्रतिज्ञा करती हूँ। बाबा यह सुनकर मुस्कराये। मातेश्वरी जी ने कहा, ''इसके लिए बहुत हिम्मत चाहिए। तुम्हारे लौकिक सम्बन्धी आयेंगे और फिर वैसे ज़ोर-ज़बर सितम करेंगे। माया भिन्न-भिन्न रूपों से आयेगी। इतनी हिम्मत है कि इन लौकिक सम्बन्धियों की निर्दयता का, सितमों का, सब प्रकार की परीक्षाओं का सामना कर सको?'' मेरे निश्चय की नींव की मज़बूती देखने के लिए मातेश्वरी जी ने ऐसी कई बातें पूछीं। परन्तु मैंने कहा, ''उन मायावी मनुष्यों को चाहिए भौतिक सुख-सामग्री; मैं सब कुछ (धन, ज़ेवर आदि) उनको देकर नंगे पाँव आयी हूँ। ईश्वर से मिलने के लिए क़दम उठाया है तो आज मेरी यह प्रतिज्ञा है कि ''हे प्रभु, जहाँ बिठाओगे, जो खिलाओगे, जैसे रखोगे वैसे रहेंगे।''

यह सुनकर मातेश्वरी जी और पिताश्री जी मुस्कराये। उस दिन से मैं कुँज भवन में रहने लगी। वह दिन मेरे लिए पुरानी दुनिया से मरने और ईश्वरीय दुनिया में जीने का शुभ दिवस था।

अब उधर क्या हआ?

उधर अमृतवेले घर वालों को जब पता चला कि मैं वहाँ नहीं हूँ, दरवाज़े बन्द हैं, ताले लगे हैं तो उन्होंने चौकीदार से पूछा। उसने कहा, ''मुझे नहीं पता।'' फिर जब साथ वालों ने अपना दरवाज़ा खुला देखा तो उन्होंने समझा कि चोर आया है। जब देखा कि किसी भी चीज़ की चोरी नहीं हुई है, तो सबने यही नतीज़ा निकाला कि वह ज़रूर गैलरी कूद कर गयी है। उन्हें एक तरफ़ तो पाँच वर्ष याद आ रहे थे जो मैंने ईश्वरीय धारणाओं में बिताये थे और दूसरी तरफ़ मन में यह भी था कि जैसे बुद्ध दुनिया से वैराग्य करके रात्रि को दो बजे जंगल में गये थे, इसने भी धन, ज़ेवर आदि का त्याग किया है तो ज़रूर कुछ और ऊँच मिला है।

वे फिर पीछा करने आ गये

मन ही मन इस बात पर विचार करते हुए वे शाम को 4 बजे कुँज भवन में पहुँच गये। उन्होंने कहा, ''हमें रुक्मणी से मिलना है। मातेश्वरी जी ने कहा, ''अवश्य मिलो। मुझे पहले तो थोड़ा डर लगा कि पता नहीं अब फिर क्या कहेंगे और क्या करेंगे। लेकिन फिर तो शिवशक्ति बनकर मैं उनके सामने गयी। मैंने साफ़ शब्दों में कह दिया कि मैं आपकी पुरानी दुनिया से मर चुकी हूँ, इसलिए अब आप मेरा पीछा नहीं करो। अगर आपको मायावी दुनिया पसन्द है तो आप बेशक दूसरी शादी करो, और माया के सुख लूटो। वे सुख अगर मुझे अच्छे लगते होते तो मैं सब कुछ आपको न दे आती। ज़रूर उससे कुछ ऊँची प्राप्ति हुई है, तभी तो उसको त्याग कर यह जीवन बिताना चाहती हूँ।'' लौकिक पति ने कहा, ''मैं शादी करना चाहता हूँ, तुम मुझे लिखकर दोगी?'' मैंने कहा, ''आप मालिक हैं पुरानी दुनिया के सुख लूटने के, मैं मालिक हूँ ईश्वरीय सुख लूटने के लिए। आप चाहते हो तो शादी करो, लिखवाने की कोई ज़रूरत नहीं है।'' फिर तो वे एक सप्ताह तक रोज़ आते रहे। कभी मोह के रूप से यत्न करते रहे, कभी लोभ के रूप में वे मुझे ईश्वरीय मार्ग से हटाने के यत्न करते रहे। मैंने कहा, मेरा तो एक ईश्वर ही है। लौकिक मामी जी, जिसके घर से पहले-पहले ईश्वरीय ज्ञान मिला था, ने बताया कि ईश्वरीय जीवन बिताना कोई इतना सहज नहीं, सोच लो, सारे जीवन का फ़ैसला जल्दबाज़ी में नहीं करो। बहुत परीक्षायें आयेंगी, क्या आप में उनको पार करने की शक्ति है? ज्ञान तो हमने भी लिया है परन्तु दुनिया की हालतों को देखकर घर में रहते हुए निमित्त बन पार्ट बजाना है। सोच-समझ कर क़दम आगे बढ़ाना। मैंने कहा, ''जबकि सत्गुरु के दर पर आये हैं तो पीछे क्यों हटा रही हो? आपने ही तो यह शिक्षा दी थी,

सत्गुरु मिलने जाइये, साथ न लीजे कोई
आगे पाँव धरिये, पीछे पाँव न होई।

यह मेरा दृढ़ संकल्प है, इससे मुझे कोई हटा नही सकता।'' मामी ने कहा, ''यह तो मैंने सोचा भी नहीं था कि आप इस प्रकार चल पड़ोगी। अभी आप जोश में हो, कुछ होश भी रखो। मैं भी तो ऐसे चल रही हूँ न? मैंने कहाह्न ''हरेक का अपना-अपना पुरुषार्थ है। इस प्रकार एक सप्ताह तक माया ने अनेक मोहिनी रूप दिखाये। आख़िर मैंने ही उन्हें लिखकर दिया कि आप जो चाहे सो कर सकते हैं। यह थी देह के सम्बन्धों से ममता टूटने की अन्तिम घड़ी।

-- भ्राता ब्रह्माकुमार जगदीश चन्द्र जी।

दादी आलराउण्डर

आप दादी गुलजार (हृदयमोहिनी दादी) की लौकिक माँ थी। बहुत ही संपन्न परिवार से थीं पर सर्व भौतिक सुख-सुविधाओं को त्याग कर, अनेक लौकिक बंधनों को पार कर यज्ञ में समर्पित हुई। बाबा से प्रथम मिलन में आप बाबा की भ्रकुटि में चमकते सफेद प्रकाश के गोले को देख आकर्षित हुई। जब हैदराबाद (सिन्ध) में बाल भवन बना तो आपने अपनी 9 वर्षीय लौकिक बच्ची शोभा (दादी हृदयमोहिनी) को बाल भवन के छात्रावास में दाखिल करवा बाबा-मम्मा की पालना में रखने का बहुत साहसी कदम उठाया। आप यज्ञ की हर छोटी-बड़ी सेवा बड़े प्यार से करती थी। आवश्यक चीजों की खरीदारी के लिए भी बाबा ने आपको ही नियुक्त किया। आप हर क्षेत्र में बहुत अनुभवी थी इसलिए बाबा ने ही आपको आलराउण्डर नाम दिया। आपका बहुत प्यारा शब्द था 'लाल'। हर एक को लाल कहकर पुकारती और दिल्ली, पाण्डव भवन में रहकर जोन इंचार्ज के रूप में अपनी सेवायें देते 23 नवंबर, 1993 में आप अव्यक्तवतनवासी बनी। आपकी छोटी बहन रुक्मिणी दादी अभी दिल्ली में रजौरी गार्डन सेवाकेन्द्र संभालती हैं।

लगभग 30 वर्षों तक दादी आलराउण्डर के साथ सेवा की साथी बनकर रही, पाण्डव भवन, दिल्ली की प्रभारी **ब्रह्माकुमारी पुष्पा बहन** उनके बारे में इस प्रकार सुनाती हैं –

पहले दादी आलराउण्डर रजौरी गार्डन सेन्टर पर रहती थी, बाद में करोल बाग सेन्टर पर आई। दादी हम सबको 'लाल', 'लाल' कहकर संबोधित करती थी। दादी अथक होकर हमेशा सेवा में तत्पर रहती थी। दादी में रूहानी पालना देने का बहुत गुण था। बाल्यकाल में 9-10 वर्ष की आयु में मैं अपने माता-पिता के साथ बाबा से मिली, मम्मा को भी मिली, उनकी गोद भी प्राप्त की। माता-पिता के साथ सेन्टर में आते-जाते दादी आलराउण्डर के संपर्क में भी आई। हमारे परिवार की पालना, अधिकतर बड़ी दीदी मनमोहिनी तथा दादी आलराउंडर के द्वारा ही हुई।

दादी बहुत बहादुर थी

दादी सुनाती थी कि जब यज्ञ में मैं बाबा के साथ थी तब बाबा ने मुझे 17 ड्यूटी दी हुई थी। दादी बहुत बहादुर थी। बाबा ने दादी को बाहर की सेवायें भी सौंपी हुई थी। दादी से भासना ऐसी आती थी कि वे केवल नारी ना होकर, एक शक्तिशाली पुरुष हैं जो कोई भी कार्य करने में प्रवीण हैं। जब दादी सेवार्थ, यज्ञ से बाहर जाने वाली थी तब बाबा ने क्लास में हाथ उठवाए कि दादी की सेवाओं की ड्यूटी लेने को कौन तैयार है? दो-तीन भाइयों ने हाथ खड़े किये और बाबा ने दादी की सेवाओं को बाँटा जबकि दादी अकेली ही उन सब सेवाओं को संपन्न करती थी। दादी का नाम आलराउण्डर ब्रह्मा बाबा ने इसलिए रखा था कि चाहे किसी भी प्रकार की सेवा हो, दादी उसे बहुत अच्छी तरह से पूरा करती थी।

मातृ रूप

कुमारियों को दादी ऐसी पालना देती थी कि कोई अपनी लौकिक कुमारी को भी शायद ऐसी पालना ना दे पाए। दादी कहती थी, यह बाबा का यज्ञ है, बाबा ही पालना देने वाला है। जो पालना हमने बाबा से ली है, वो हम तुमको दे रहे हैं। एक बार, जब मैं दिन में भोजन करने गई तो खिलाने वाली बहन दही देना भूल गई। मेरा तो ध्यान नहीं था पर दादी का ध्यान गया कि इस बहन की थाली में दही नहीं है। उन दिनों मैं नई-नई समर्पित हुई थी। दादी ने अपने

भोजन की थाली में से दही की कटोरी मुझे भेज दी। बाद में एक बहन द्वारा मुझे पता चला कि आज दादी ने दही नहीं खाया, अपनी कटोरी आपको भेज दी। मैंने सुना तो दिल एकदम पिघल गया। सब्जी-अनाज की खरीदारी, नये सेवास्थान के लिए जगह देखना, किसी से विशेष मिलना, पहरा देना, भण्डारे में भोजन बनाना, टोली बनाना, अनाज साफ करवाना, सब्जी कटवानी, भोजन खिलाना आदि अनेक प्रकार की सेवाओं की जिम्मेवारी दादी पर थी। जब कोई विशेष नाश्ता बनता था तो अपने हाथों से सबको खिलाती थी ताकि सबको बराबर मिले और सभी संतुष्ट रहें। इस प्रकार उनका बहुत ही प्यारा मातृ रूप नजर आता था।

नष्टोमोहा

दादी नष्टोमोहा थी। गुलजार दादी उनकी लौकिक सुपुत्री हैं, दोनों साथ-साथ रहे पाण्डव भवन में लेकिन हमें कभी भी ऐसा आभास नहीं होता था कि गुलजार दादी इनकी लौकिक सुपुत्री हैं, और ही, हमको यह आभास होता था कि हम कुमारियाँ ही इनकी लौकिक-अलौकिक बच्चियाँ हैं क्योंकि हम सबका इतना ध्यान रखती थी। दादी कहती थी, हम देह के संबंधियों को और सारी पुरानी दुनिया को छोड़ आये हैं और अगर फिर से हमारा खिंचाव उनकी तरफ होता है तो यह ऐसे ही है जैसेकि कोई थूक फेंक देता है और फिर उसे चाटता है। दादी कहती थी, देह और देह के संबंधियों से तो हमारा उत्थान हुआ नहीं। जब दादी से हम पूछते थे, लौकिक परिवार के बारे में सुनाओ तो कहती थी, उनको याद नहीं करना। जब बाबा ने देह की दुनिया से निकाल लिया तो उन बातों का जिक्र करना माना आत्मा को नीचे लाना। दादी कहती थी, मैं उन बातों को भूल चुकी हूँ। बाबा के चरित्र खूब सुनाती थी। हम कहते थे, दादी आप सिन्धी भाषा में बात नहीं करते हो, तो कहती थी, जब से बाबा ने मना किया, मैंने सिन्धी बोलना छोड़ दिया। सिन्धी बोलना भी लौकिक को याद करना है। बड़ी दीदी कहती थी, आलराउण्डर सिन्धी नहीं बोलती इसलिए अच्छा भाषण कर लेती है। दादी भाषण करने में बहुत होशियार थी। गुलजार दादी के साथ भी हिन्दी में ही बात करती थी। जिन बातों के लिए बाबा की मना थी, दादी उनको कभी नहीं करती थी।

बोलत-बोलत भरे विकार

पाण्डव भवन में शुरू से काफी बड़ा संगठन रहा है। यदि कभी किसी भाई ने थोड़ा असंतुष्टता से कुछ बोल भी दिया तो दादी चुप करके बैठी रहती थी। कहती थी, बोलत-बोलत भरे विकार (ज्यादा बोलने से विकार भर जाते हैं)। यदि हम कहते थे, दादी, देखो, उसने ऐसा बोल दिया तो कहती थी, चुप। उस बात को रिपीट भी करने नहीं देती थी। जवाब देना, चेहरे पर कोई भाव लाना, यह तो दूर की बात रही। कभी कोई उनकी बात यदि किसी कारण से नहीं सुनता था तो शक्तिशाली रूप में स्थित होकर चुप बैठ जाती थी। दादी निर्भय थी। ना व्यक्ति से, ना परिस्थिति से डरती थी।

नष्टोमोहा बनने की ट्रेनिंग

लौकिक माता का मुझमें बहुत मोह था। मैं समर्पित हुई तो वो रोती रहती थी और दादी के पास आती थी। एक बार मुझे जोर से बुखार आया। लौकिक घर से फोन आया तो दादी ने ना मुझे फोन दिया, ना मुझे फोन के बारे में बताया और ना घरवालों को बताया कि आपकी लौकिक बच्ची को बुखार है। काफी दिनों के बाद उन्हें पता चला, वे मिलने आए तो कहने लगे, हमने तो फोन कई बार किया था लेकिन आपसे हमारी बात दादी आलराउण्डर ने कराई नहीं। मैंने बाद में समझा कि दादी ने यह कितना अच्छा किया जिससे ना तो मुझे ख्याल आया कि मैं घर में जाऊँ और ना ही मेरे प्रति घरवालों का चिन्तन चला। इस प्रकार दादी ट्रेनिंग देती थी कि लौकिक की तरफ कभी मोह न जाए।

बड़ों का सम्मान

दादी अलर्ट, एक्टिव थी। दादी के कमरे के अंदर बाथरूम नहीं था, बरामदे में जाना पड़ता था। हम कई बार कहते थे, तो कहती थी, फिर क्या हुआ, हम तो शुरू से ऐसे ही यज्ञ में रहे हैं। दादी की आयु जब और बढ़ी और सभी इस बारे में कहने लगे तो दादी ने कहा, बड़ी दादी की आज्ञा होगी तो बनायेंगे। फिर एक बार जब दादी प्रकाशमणि पाण्डव भवन में आई थी, तब दादी ने उनको सब बात बताकर उनसे अनुमति ली। कोई भी बात होती थी तो बड़ी दादी से पूछकर करती थी। इस प्रकार खुद बड़ी होते भी, बड़ी दादी का इतना सम्मान करती थी। दादी पत्र द्वारा सारा समाचार मधुबन भेजती थी। मधुबन से कम्यूनिकेशन बहुत अच्छा रखती थी। क्या खरीदारी की, कौन मेहमान आया, क्या सेवा हुई आदि-आदि सब समाचार उस पत्र में विस्तार से लिखती थी। सीजन का कोई भी पहला फल आता तो पहले मधुबन भेजती, बाद में खुद स्वीकार करती। सेन्टर पर भोग लगाने के लिए खर्चा मिलता था तो उस पैसे में से भी मधुबन के लिए पैसा बचा लेती थी। हमको भी ऐसा ही सिखाती थी।

सादगी के साथ अथॉरिटी

दादी बहुत सादगी वाली थी। सफाई की कला, टोली, भोजन बनाने की कला भी सिखाती थी। बचत सिखाती थी। जब कभी फोटो खींचने के लिए हम कैमरा निकालते थे तो कहती थी, यह माया है, यह तुमको चक पहन रही है। सब्जी काटने के बाद, कई सारे पत्ते निकालकर दिखाती थी जो फेंक दिये होते थे। अनाज सफाई खुद बैठकर कराती थी, सिखाती थी। उनकी चाल साधारण नहीं थी, ऐसा लगता था, कोई महाराजा चल रहा है। दादी का प्रशासन बहुत शक्तिशाली था। किसी स्कूल, कॉलेज के प्रिंसिपल की तरह अनुशासन में रहती थी, एकदम सीधी चलती थी, झुककर नहीं। दादी की सबके प्रति समान दृष्टि थी। व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। बड़े-बड़े लोग आकर मिलते थे, संतुष्ट होकर जाते थे, महसूस करते थे, एक माँ की पालना मिली है। उनका जगतमाता का रूप भी था तो रूहानी टीचर का भी। ज्ञान बड़ी अथॉरिटी से सुनाती थी। ज्ञान की गहराई में जाती थी। बेहद सेवा का बहुत शौक था। अजमल खां पार्क में जब मेला आयोजित किया तो कहती थी, ऐसा मेला करो जो सबसे सुन्दर हो। अच्छे से अच्छा मेला होना चाहिए। पहले तो सारी दिल्ली के सेवाकेन्द्रों को दादी आलराउण्डर ही संभालती थी। सुबह मुरली क्लास दादी गुलजार करवाती थी, दादी आलराउण्डर बाद में सभी भाई-बहनों से मिलती थी। सतगुरुवार और रविवार को आधा घंटा क्लास कराती थी, अमृत पिलाती थी। दादी अथक बहुत थी, हम जवान कन्यायें थक जाती थी, जाकर सो जाती थी पर दादी इतनी आयु में भी हर समय कमरे में बैठी मिलती थी, सोई हुई नहीं। सुबह चार बजे बाहर बरामदे में आ जाती थी, वहीं बैठकर बाबा को याद करती थी और सारा दिन हरेक आने-जाने वालों पर ध्यान रखती थी।

समय के साथ परिवर्तन

दादी खुद तकिये के नीचे दबाये हुए, बिना प्रेस वाले कपड़े पहनती थी पर समय के साथ-साथ भी चलती थी। बाबा की और यज्ञ की रीति-रस्म को ध्यान में रखती थी परंतु सेवा, समय और वर्तमान की कुमारियों को देखकर कई नियमों में छूट भी देती थी। ऐसे नहीं कि कोई कुमारी इतना त्याग ना कर सके तो जबर्दस्ती उसे बोझिल किया जाये। जैसे मैं जब आई तो प्रेस वाले कपड़े पहनती थी, तकिये के नीचे रखे कपड़े मुझे पसंद नहीं थे। दादी ने युक्ति से कहा, तुम गठड़ी बाँधकर कपड़े नीचे दे जाओ, मैं बाहर से प्रेस करवाकर ऊपर भिजवा दूँगी। गुप्त पालना देकर भी कुमारियों को संतुष्ट रखती थी और साथ-साथ उनकी शक्ति के अनुसार त्याग का पाठ भी पढ़ाती थी।

नब्ज देखने में प्रवीण

दादी की स्टूडेन्ट लाइफ दिखाई देती थी। बरामदे में बैठी दादी मुरली, पत्रिका आदि पढ़ती रहती थी। कभी

दादी को खाली बैठे नहीं देखा। वे या तो टोली देने में या पढ़ने में या ज्ञान सुनाने में ही व्यस्त नजर आते थे। दादी को सुस्ती पसंद नहीं थी। यदि कोई बहाना करके, अलबेलेपन में सोये तो पसंद नहीं था। तबीयत खराब होने पर हाल-चाल पूछती थी। दवाई-पानी, आराम का प्रबंध देती थी पर जब ठीक से भोजन खाना शुरू हो जाता था तो कहती थी, अब सेवा पर आना है। जब हम नये-नये आये थे, ज्ञान में इतने प्रवीण नहीं हुए थे तब दादी हमें मार्गदर्शन देती थी कि आज यह परिवार कोर्स करने आयेगा, इसको क्या-क्या सुनाना है। कोर्स करने आने वालों से भी पहले पाँच मिनट मिलती थी, फिर कहती थी, 'लाल', इसको परिवार में शान्ति की बातें विशेष सुनाना या आत्मा पर विशेष सुनाना, ऐसे उसकी जरूरत को परख लेती थी। हम तो आधे घंटे में पाठ पढ़ाकर आ जाते थे पर दादी उन कोर्स करने वालों से या म्यूजियम समझने वालों से भी, एक-एक से बैठकर बातचीत करती थी। उनके प्रश्नों के उत्तर भी देती थी।

जगदीश भाई देते थे जिगरी सम्मान

जगदीश भाई के मन में दादी के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। वे दादी के त्याग को देखकर बहुत प्रभावित थे। दादी ने कितने बड़े संपन्न परिवार को छोड़ा, गुलजार दादी जैसा रत्न यज्ञ को दिया, इतनी बड़ी दिल्ली की जिम्मेवारी उठाई और दिन-रात अथक रूप से सेवारत रही – इन बातों के कारण जगदीश भाई दिल से सम्मान देते थे। दादी को देखकर खुद खड़े हो जाते थे, नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर ओमशान्ति बोलते थे। दादी से बहुत अच्छी रूहरिहान करते थे और कहते थे, आपके मुख से सुनूँगा तो अच्छी तरह उसे लिख सकूँगा। दादी का भी जगदीश भाई प्रति बहुत स्नेह और विश्वास था कि मैं कोई भी बात इसे सुनाऊँगी तो यह जल्दी समझेगा। दिल की बात दादी जगदीश भाई को बुलाकर कर लेती थी।

अन्तिम घड़ी

जब मधुबन में (1993 में) राजाओं का प्रोग्राम होने वाला था, दादी की तबीयत ठीक नहीं थी पर मधुबन जाने की दिल थी। तब जगदीश भाई ने अपने साथ प्लेन के द्वारा मधुबन ले जाने का साहस दिखाया। दादी ने कार्यक्रम भी देखा और बीमारी की हालत में बाबा से भी मिली। फिर एक मास ग्लोबल हॉस्पिटल में ट्रीटमेंट भी चली। फिर 23 नवंबर 1993 में 89 वर्ष की आयु में वहीं हॉस्पिटल में ही शरीर का त्याग कर बापदादा की गोद में समा गई। मेरे जीवन का तो आधार थी दादी। भले ही आयु और तबीयत को देखते हुए उनका जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी परंतु फिर भी खालीपन महसूस हुआ। गुलजार दादी का साथ होने के कारण हमें बहुत अकेलापन तो नहीं लगा पर आलराउण्डर दादी के होते जो हम निश्चिन्त रहते थे, वो निश्चिंतता चली गई। दादी आलराउण्डर के होते हमें ऐसा लगता था कि हम बच्चे हैं और मौज में रह रहे हैं।